

## समकालीन ग़ज़लों की भाषाई संरचना

यशवंत काछी<sup>1</sup>  
डॉ. वंदना चराटे

### सारांश :-

भारत में ग़ज़ल एक आयातित विधा के रूप में जानी जाती है, इसका सफ़र बहुत लंबा है। इस विधा का मूल अरब में मिलता है। यह विधा अरबी के क़सीदे से निकलकर जब फारसी में आई, तो इसने एक नया कलेवर ग्रहण किया और ग़ज़ल कहलाई। फारसी से यह विधा हिंदी और उर्दू में आई। वर्तमान समय में अनेक भाषाओं में इस विधा पर कलम चलाई जा रही है। वास्तव में 13वीं शताब्दी में मियाँ अमीर खुसरो ने ग़ज़ल के बीज इस धरती की मिट्टी में बो कर भारत में ग़ज़ल के जनक का सम्मान पाया। तब से लेकर आज तक इस विधा की बेल निरंतर फल-फूल रही है। इस बेल को सैकड़ों मालियों ने अपनी कलम की स्याही से सींचा और सरसब्ज़ रखा। आज के दौर में इस बेल में कई रंगों की कलियाँ चटककर अपनी महक गुलशन रूपी साहित्य में फैला रही हैं।

कुंजी शब्द :- ग़ज़ल, ग़ज़लकार, अभिव्यक्ति, संप्रेषण, लिपि, ग़ज़लगोई, विलोपन।

किसी भी प्रकार के साहित्य की सफलता दो बातों पर निर्भर करती है:- पहली अभिव्यक्ति और दूसरी संप्रेषण पर। इन दोनों बातों की सफलता का माध्यम होती है, भाषा और ग़ज़ल की प्रभावशीलता तो उसकी कहन पर ही निर्भर करती है। जिसके लिए ग़ज़लकार के पास एक प्रभावपूर्ण भाषा होना आवश्यक है और ग़ज़ल के बारे में तो कहा भी जाता है ग़ज़ल लिखी या रची नहीं जाती है बल्कि ये तो कही या पढ़ी जाती है। वर्तमान समय में ग़ज़ल में जिस भाषा का प्रयोग किया जा रहा है, वह आमफहम की भाषा है। भाषा की इसी तहज़ीब को गंगा-जमुनी तहज़ीब कहा गया है। ग़ज़ल के नए दौर में उर्दू ग़ज़लों में हिंदी के शब्दों और हिंदी ग़ज़लों में उर्दू के शब्दों का प्रयोग बिना किसी भेदभाव के सरलता से किया जा रहा है। लिपियों के आधार पर ग़ज़लों को भले ही कई खेमों में बाँट दिया गया है, लेकिन कहन के आधार पर ग़ज़ल केवल ग़ज़ल ही होती है। ग़ज़ल की भाषा की पहुँच आम लोगों तक है, इसी कारण हम देखते हैं कि एक बड़ी संख्या में लोग ग़ज़ल से मुतासिर हैं और उन्हीं की भाषा वर्तमान समय में ग़ज़लों की भाषा है।

<sup>1</sup> तुलनात्मक भाषा एवं संस्कृति अध्ययनशाला, देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इंदौर

ग़ज़ल, अदब की एक बेहद ही लोकप्रिय विधा है। इसके माध्यम से शायरों ने प्रेम-सौंदर्य, जामो-मीना, साक्री-शराब, सामाजिक-आर्थिक-राजनीतिक विसंगतियों, मानव-मूल्यों और संस्कृति एवं अपने जीवनानुभवों को अभिव्यक्त किया है। आज भले ही ग़ज़ल ने अपनी लोकप्रियता के कई आयाम गढ़े हों, परंतु कुछ समय पहले तक अदब की इस विधा को बड़ी ही हेय और उपेक्षित दृष्टि से देखा जाता था। इसके बारे में कहा जाता था कि यह तो कोठों की ज़ीनत और महफिलों की रौनक है, इसमें तो केवल महबूब का हाले-दिल बयाँ किया जाता है, इसमें तो फकत साक्री-ओ-शराब की बातें की जाती हैं और यह बात सच भी लगती है। लेकिन यह पूरी तरह से सच नहीं है पुरानी ग़ज़लों में हमें आज भी जीवन के बड़े-बड़े फलसफे मिल जाते हैं। किन्तु एक बात तो निस्संदेह सत्य है कि 18वीं शताब्दी तक ग़ज़लों का दायरा सीमित था। उसकी पहुँच आम जनमानस के तबके तक कम थी। आज ग़ज़लों के क्षेत्र का जो विस्तार हमें दिखाई देता है, उतना विस्तार तत्कालीन समय में नहीं दिखता है। इस बात को गालिब सरीखे नामवर शायर ने भी स्वीकार किया है। वे अपने इस दर्द को अभिव्यक्त करते हुए कहते हैं:-

**“बक़्द-ए-शौक़ नहीं, ज़फ़-ए- तंगना-ए-ग़ज़ल  
कुछ और चाहिए वुसअत, मिरे बयाँ के लिये।”<sup>1</sup>**

आज ग़ज़ल का ओहदा और दायरा बहुत अधिक समृद्ध और विस्तृत है। आज एक बड़ी संख्या में ग़ज़लकार अपने कलाम लिख रहे हैं। लेकिन ग़ज़ल का अर्थ मात्र चार-पाँच शेरों की कोई तुकबंदी नहीं है। ग़ज़ल का अर्थ तो शायर का चिंतन है, जो शायरी के व्याकरणिक ढाँचे में बँधा होता है। एक ग़ज़ल में ही ग़ज़लकार के भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण दिख जाते हैं और हमें यह पता लग जाता है कि शोअरा कितना क़ाबिल फ़नकार है। ग़ज़ल का इतिहास बहुत लंबा और पुराना है। इस परंपरा में न जाने कितने उस्ताद फ़नकार हुए। कुछ समय के थपेड़ों से मिट गए, कुछ की धुंधली-सी तस्वीर अब भी दिखाई देती है और कुछ लोगों के मन-मस्तिष्क पर अपनी अमिट छाप छोड़ गए हैं। किसी भी कलमकार की प्रसिद्धि के दो सबसे बड़े कारण होते हैं, जिनमें से एक उसके विचारों की संप्रेषणीयता और दूसरा है भाषा। भाषा, तो संप्रेषण का माध्यम ही है। जिन फ़नकारों की भाषा सरल, सहज और बोधगम्य रही, जिन्होंने भारी-भारी शब्दों का चमत्कार कम दिखलाया और आमों-खास की भाषा का प्रयोग किया। आज वही फ़नकार लोगों के दिलो-दिमाग़ और जुबान पर ज़िंदा हैं।

वली, मीर, मोमिन, जौक़, अकबर, इक़बाल, फ़ैज़ अहमद फ़ैज़, कैफ़ी आज़मी, साहिर लुधियानवी, निदा फ़ाज़ली, बशीर बद्र, गोपाल दास नीरज, दुष्यंत कुमार आदि सभी शायर अपनी सरल भाषा में कहे गए शेरों के कारण जाने जाते हैं, न की भारी-भरकम आम-आदमी की समझ से परे फ़ारसीनिष्ठ और संस्कृतनिष्ठ शब्दों के प्रयोग के कारण। ग़ज़लों की भाषा आम जनमानस की भाषा है और जिस भी ग़ज़लकार ने इस भाषा का प्रयोग किया है। वह क़ामयाबी की बुलंदियों पर

क्रायम हुआ। हिंदुस्तान में ग़ज़लों की भाषा हिंदुस्तानी रही है। जिसमें उर्दू और हिंदी दोनों का मिश्रण है। जितने भी ग़ज़ल कहने वाले ग़ज़लकार हैं, उन्हें यह बात हमेशा याद रखनी चाहिए कि अच्छी ग़ज़ल सिर्फ़ आमफहम की भाषा में ही कही जा सकती है और हिंदुस्तान की गंगा-जमुनी तहज़ीब वाली भाषा ही वह भाषा है--- न कि केवल संस्कृत, अरबी, फ़ारसी वाले वाक्य। “ग़ज़ल की भाषा वह काव्य-भाषा है, जो दो संप्रदायों को जोड़ने वाली है, वह न हिंदू है, न मुसलमान। ग़ज़ल काव्य की वह ज़मीन है, जहाँ हिंदी उर्दू हो जाती है और उर्दू हिंदी। यही वह जगह है जब ग़ज़ल को हिंदी ग़ज़ल या उर्दू ग़ज़ल कहना गुनाह करने की तरह हो जाता है। भाषा के इस ज्ञान के बिना ग़ज़लगोई मुश्किल है।”<sup>2</sup>

भाषा के आधार पर ग़ज़ल को भाषाई खेमों में बाँट देना कहाँ तक उचित है? विचारों के माध्यम से ग़ज़ल कहीं जाती है और विचारों में भाषा का बंधन कहाँ होता है। अपनी बात को आम-आदमी तक पहुँचाने के लिए उन्हीं की भाषा और लहज़े में बात कहनी पड़ती है। आज ग़ज़ल को उर्दू और हिंदी दो भाषाओं में बाँटा जा रहा है, लेकिन जब यह दोनों भाषाएँ लोगों के बीच आती हैं, तो इनमें लिपि को छोड़कर कोई और अंतर नहीं रह जाता है। “जैसे दो इंसानों के चेहरे एक से नहीं होते लेकिन नस्ल से दोनों इंसान होते हैं, ठीक वैसे ही एक भाषा के इन दो भाषाओं के चेहरे, यानी लिपियाँ भिन्न हैं लेकिन दोनों की वाक्य-रचना, व्याकरण और बोलचाल के मुहावरे एक-से ही हैं।”<sup>3</sup>

अगर हम ग़ज़लों के उद्भव और विकास की बात करें, तो हम पाते हैं कि प्रत्येक काल में ग़ज़लों की भाषा में परिवर्तन हुए हैं और जबसे यह विधा भारत की सरज़मीं पर आई, तबसे इस विधा में अभिव्यक्त विचारों की भाषा बोलचाल की भाषा ही रही है। यदि हम उर्दू और हिंदी दोनों भाषाओं को देखें तो हम पाते हैं दोनों एक साथ जन्मी, पली-बढ़ी और ग़ज़ल के क्षेत्र में उतरीं जहाँ पर यह ज़मीन से जुड़ीं। हमारे यहाँ ग़ज़लों की एक अलग भाषाई परंपरा रही है। “ज़िगर या फ़िराक और शमशेर या दुष्यंत की भाषा हमारी परंपरा है। हमें अपने परिवेश के बीच की भाषा को गढ़ना है।”<sup>4</sup>

हर भाषा की अपनी एक सीमा होती है, जिसमें उसके शब्द बँधे होते हैं। भाषा तो हमेशा से परिवर्तनशील रही है और जो भाषा परिवर्तनशील नहीं होती है, वह धीरे-धीरे समय के बहाव में बह जाती है। किसी भाषा की उन्नति केवल उस भाषा के शब्दों के द्वारा ही संभव नहीं होती है। समय की माँग के अनुरूप उसे अन्य भाषाओं के शब्द स्वयं में समाहित करने पड़ते हैं और इसी से भाषा की वृद्धि होती है। भाषा की शाब्दिक बढ़ोत्तरी हेतु अन्य भाषाओं के शब्दों का अधिग्रहण अच्छी बात है, परंतु जब किसी भाषा में पर्याप्त शब्द हों तो उनके अनुप्रयोग में भी कोई दुविधा नहीं होना चाहिए। “सूर्य पूर्व दिशा से निकलता है।” के स्थान पर “सन ईस्ट से निकलता है” की कोई आवश्यकता नहीं है। ऐसा करके हम अपनी भाषा की उन्नति नहीं बल्कि अवनति करने पर तुले हुए हैं। वर्तमान में हम एक गंभीर संकट से जूझ रहे हैं, वर्षों से साहित्य में प्रयुक्त संस्कृतनिष्ठ शब्दों के सरलीकरण के नाम पर इन शब्दों के विलोपन के संकट से। किसी भी भाषा से उसके मूल शब्दों का

विलोपित होना, उस भाषा के लिए शुभ संकेत नहीं है और यह संकट हिन्दी भाषा पर गंभीर रूप से छाया हुआ है। जहाँ एक ओर अंग्रेजी और अन्य भाषाओं में कठिनता होने के बावजूद भी उनके शब्दों को सीखने के लिए शब्दकोशों की सहायता लेकर शब्दों को सीखा जा रहा है, वहीं दूसरी तरफ हिन्दी भाषा जो हमारी राजभाषा भी है, के संस्कृतनिष्ठ शब्दों को कठिन बताकर इन शब्दों के विलोपन का कार्य किया जा रहा है। इन शब्दों की समुचित जानकारी प्राप्त कर लेने पर यह भी सरल लगने लगेंगे। अतः इन शब्दों का विलोपीकरण करने के स्थान पर इन शब्दों से मित्रता की जाए और इनको भी उपयुक्त भावों में अभिव्यक्त किया जाए। शायरी में व्यक्त भावों के लिए भावों के अनुरूप शब्द चुने जाते हैं। यदि किसी को राम और सीता के दांपत्य जीवन के बारे में शायरी में कहना है, तो उसे दोनों के दांपत्य प्रेम को दर्शाने के लिए 'स्नेह या प्रेम' शब्द का ही प्रयोग करना पड़ेगा। वहाँ 'इश्क़' शब्द का प्रयोग अनुचित होगा।

“अपने भाषागत संस्कारों की सीमाओं के कारण ही हम अन्य भाषाओं के शब्दों और भावों को अपनी भाषा में ठीक वैसा ही व्यक्त कर पाने में असमर्थ होते हैं। इस कारण भाषाएँ अन्य भाषाओं के शब्दों को ज्यों का त्यों अपने में समो लेती हैं। यही दृष्टिकोण किसी भाषा के विकास में सहायक होता है। जैसे फ़ारसी शब्द 'राम' के लिए हिंदी में कोई शब्द नहीं है और यह शब्द हिंदी में अपने सटीक अर्थ में रच-बस गया है, तो इसके लिए कोई शब्द क्यों गढ़ा जाए? इसी प्रकार हिंदी में अनेक शब्दों- धर्म, नयन, भक्त, संस्कार, आरती आदि के लिए उर्दू, फ़ारसी, अंग्रेजी ही क्या संसार की किसी भाषा में शब्द नहीं हैं।”<sup>5</sup> प्रत्येक शब्द की अपनी एक अलग ही दुनिया होती है। ग़ज़ल में इसी प्रकार की भाषा का प्रयोग किया जा रहा है, जो मिले-जुले भाषाई शब्दों में प्रचलित हैं। वर्तमान समय में तो ग़ज़लों को कई भाषाओं में लिखा जा रहा है। लेकिन जिस भाषा का प्रचलन लोक-संसार में होता है, भाषा के उन्हीं शब्दों के माध्यम से ग़ज़लों में भावाभिव्यक्ति होती है।

जो भी ग़ज़लकार इस विधा के नवाजिशे-क्रम से मक़बूल शख्सियत के तौर पर क़ायम हुए हैं। उन सभी ग़ज़लगोओं ने ऐसी भाषा में ग़ज़लें कही हैं, जो न उर्दू और न हिंदी हैं, ऐसी भाषा को ख़ालिस उर्दू कहा जाता है। जो की उर्दूदाँ भी आसानी से समझ लेता है और हिंदीदाँ भी। ग़ज़लों की भाषा के बारे में अपने भाव व्यक्त करते हुए ग़ज़ल-सम्राट दुष्यंत कुमार कहते हैं, कि:- “उर्दू और हिंदी अपने-अपने सिंहासन से उतरकर जब आम-आदमी के पास आती हैं, तो उनमें फ़र्क़ करना बड़ा मुश्किल होता है। मेरी नीयत और कोशिश यह रही है कि इन दोनों भाषाओं को ज़्यादा से ज़्यादा करीब ला सकूँ। इसलिए ये ग़ज़लें उस भाषा में कही गई हैं, जिसे मैं बोलता हूँ।”<sup>6</sup> इस संदर्भ में अपनी ग़ज़ल के माध्यम से वह कहते भी हैं:-

“मैं जिसे ओढ़ता बिछाता हूँ  
वो ग़ज़ल आपको सुनाता हूँ।”<sup>7</sup>

उर्दू के कई शायर हिंदी के संस्कृतनिष्ठ शब्दों का बहुत ही शानदार तरीके से प्रयोग करते हैं। भले ही वह संस्कृतनिष्ठ हिंदी से भलीभाँति परिचित नहीं होते हैं। उसी तरह हिंदी के कई शायर उर्दू नहीं जानते हुए भी उर्दू शब्दों का इस्तेमाल बड़ी ही समझदारी से कर लेते हैं। इसका कारण यही है

की ग़ज़ल ने उस भाषा को अपनाया है, जिसे हिंदुस्तानी बोलचाल की भाषा कहते हैं। जहाँ उर्दू वाले हिंदी और हिंदी वाले उर्दू शब्दों का दिल खोलकर प्रयोग करते हैं। ग़ज़लों में भाषा का प्रचलित, स्वाभाविक और सर्वव्यवहृत स्वरूप ही लिया जाता है।

“बशीर साहब ने अपने एक इंटरव्यू में कहा था कि:- जो शब्द हमारी ज़िंदगी में घुल-मिल जाते हैं, ग़ज़ल की भाषा उन्हीं से बनती है। शब्दों की भाषिक व्युत्पत्ति महत्वपूर्ण नहीं है। अपने युग और समकालीन जीवन का चित्र अंकित कर सकने वाले और हमारे जीवन की दैनंदिन समस्याओं और कशमकश की काव्यमय प्रस्तुति कर सकने वाले शब्द ही ग़ज़ल की असली भाषा हैं। उन्हें वह ग़ज़ल ज़्यादा भरपूर लगती है, जिसकी भाषा सुनने में हिंदी और उर्दू के फ़र्क को खत्म करती है।”<sup>8</sup> वर्तमान समय में हिंदी-उर्दू के साथ दैनंदिन जीवन में अंग्रेजी के शब्दों का प्रयोग भी होने लगा है। एक अनपढ़ व्यक्ति भी कई अरबी, फ़ारसी और अंग्रेजी के शब्दों का प्रयोग बड़े धड़ल्ले से कर रहा है। ग़ज़लों में प्रयुक्त शब्द तो विचारों की अभिव्यक्ति के ऊपर निर्भर करते हैं। वह उपयुक्तता की दृष्टि और वातावरण की सृष्टि की अनिवार्यता लेकर ग़ज़ल में ढल जाते हैं। यह शब्द ठीक उसी प्रकार अपनी स्वाभाविता से ग़ज़लों में आ जाते हैं, जैसे बहती हुई नदी की धार में कोई फूल चला आता है। इन्हीं अलग-अलग भाषिक फूलों से ग़ज़ल की भाषा का ग़ज़रा गूँथा जाता है। बानगी के तौर पर बशीर साहब का यह शेर देखिए:-

“दुनिया भर के शहरों का कल्चर यकसाँ  
आबादी तन्हाई बनती जाती है।”<sup>9</sup>

### निष्कर्ष:-

ग़ज़ल ने लगभग एक हजार साल का सफर तय कर लिया है। ग़ज़ल की इस लंबी यात्रा में इसकी कहन तथा लेखन में बहुत सा अंतर भी साफ दिखाई देता है। हर दौर में ग़ज़ल की कहनात उस युग के अनुरूप प्रचलित भाषा के अनुसार ही दिखाई देती है। हमें ग़ज़लों में बहुत सा भाषिक बदलाव देखने को मिलता है। भारत में ग़ज़लों के आरंभिक समय से वर्तमान समय तक भाषा का परिवर्तन अरबी, फ़ारसी, हिंदी, उर्दू कई रूपों में हुआ है। वर्तमान में देश में जिस प्रकार की भाषाओं का चलन है। उसी भाषा में भरपूर ग़ज़लें कही जा रही हैं। अब तो क्षेत्रीय बोलियों में भी ग़ज़लें कही जा रही हैं। इसके इतर अन्य भारतीय भाषाओं में भी बड़ी अच्छी और शीरी ग़ज़लें कही और सुनी जा रही हैं। अतः हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि समकालीन ग़ज़लों का भाषिक क्षेत्र अत्यंत ही व्यापक एवं समृद्ध है। जिसकी पहुँच आमफहम के जीवन तक भी है।

### सहायक ग्रंथ सूची:-

1. दीवान-ए-ग़ालिब, संपादक- अली सरदार जाफरी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2021, पृ. क्र. 388.

2. ग़ज़ल... दुष्यंत के बाद, संपादक- दीक्षित दनकौरी, वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नयी दिल्ली, 2014, पृ. क्र. Xxvi.
3. ग़ज़ल सप्तक, संपादक- गोपालकृष्ण कौल, सामयिक प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, 2023, पृ. क्र. 9.
4. ग़ज़ल... दुष्यंत के बाद, संपादक- दीक्षित दनकौरी, वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नयी दिल्ली, 2014, पृ. क्र. Xxix.
5. वही, पृ. क्र. Xxxiv.
6. साये में धूप, दुष्यंत कुमार, राधाकृष्ण प्रकाशन, जगतपुरी, दिल्ली, 2022, पृ. क्र. Vii.
7. वही, पृ. क्र. 62.
8. कल्चर यक्साँ समग्र, बशीर बद्र, संपादक- बसंत प्रताप सिंह, वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नयी दिल्ली, 2023, पृ. क्र. 20.
9. वही, पृ. क्र. 424.